अभ्यास – 06

(80 WPM, 996 Words)

कलकत्ता हाईकोर्ट के जज सीएस कर्नन का सुप्रीम कोर्ट के साथ शुरू हुआ चूहे-बिल्ली जैसा खेल संवैधानिक त्रासदी में तब्दील होता दिख रहा है। कर्नन ने सुप्रीम कोर्ट के आठ जजों के खिलाफ पांच वर्ष सश्रम कारावास का दुस्साहसिक आदेश दिया जिसके बाद सुप्रीम कोर्ट ने कर्नन को छह महीने के लिए जेल भेजने का आदेश दे दिया है। आजादी के बाद पहली बार हाईकोर्ट के किसी जज को जेल की सजा सुनाई गई है। कुछ लोगों का मत है[80] कि पुनर्विचार याचिका की आड़ में कर्नन को अगले महीने रिटायर होने दिया जाए और फिर उन्हें गिरफ्तार किया जाए।

जाहिर है कि इस तरह संवैधानिक संकट अभी भी टल सकता है। कर्नन का आचरण अक्षम्य था, इस पर शायद ही कोई असहमत हो। इसके बावजूद असल सवाल यह है कि क्या सुप्रीम कोर्ट को किसी जज को इस तरह दंडित करने का अधिकार है? आखिर सुप्रीम कोर्ट अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर कैसे जा सकता है? संविधान लागू होने[80] के पहले 1949 में गवर्नर जनरल सी राजगोपालाचारी ने फेडरल कोर्ट की रिपोर्ट पर हाईकोर्ट के एक जज शिव प्रसाद सिन्हा को हटाया था। उसके बाद महाभियोग के तहत कोई भी जज नहीं हटाया गया। वी रामास्वामी के खिलाफ संसद में महाभियोग प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया, जबकि सौमित्र सेन और दिनाकरन ने महाभियोग की धमकी के बाद बतौर जज अपने पद से इस्तीफा दे दिया था।

सरकार, संसद और न्यायपालिका की अपनी-अपनी शक्तियां और कार्यक्षेत्र हैं। जब सरकार जजों[80] की नियुक्ति में हस्तक्षेप नहीं कर सकती तो फिर सुप्रीम कोर्ट संसद के अधिकार क्षेत्र में कैसे दखलंदाजी कर सकता है? शायद यह बढ़ती न्यायिक सक्रियता से संसदीय व्यवस्था में हो रहे असंतुलन का ही सवाल है कि इस मसले पर विमर्श के लिए शांताराम नाईक ने संसद का विशेष अधिवेशन बुलाने की मांग की है। केशवानंद भारती मामले में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसार न्यायिक स्वतंत्रता संविधान का मूल ढांचा है जिसे संसद[80] भी नहीं बदल सकती। चूंकि हाईकोर्ट के जज को निलंबित या बर्खास्त करने का अधिकार सुप्रीम कोर्ट को नहीं है इसलिए यदि यह तर्क दिया जा रहा है तो यह स्वाभाविक ही है कि जब जजों को समान संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है तो सुप्रीम कोर्ट ने कर्नन को सजा देकर तो संविधान का उल्लंघन ही किया।

ध्यान रहे कि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और अन्य संवैधानिक संस्थाओं के विरुद्ध भी आरोप लगते रहे हैं। क्या इन मामलों में भी अवमानना का वैसा[80] ही मामला बनेगा जैसा कर्नन को लेकर बना? हाल में सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जज मार्कंडेय काटजू जो कर्नन की नियुक्ति प्रक्रिया में शामिल थे, ने एक मामले में सुप्रीम कोर्ट से माफी मांग कर अवमानना के अपराध से मुक्ति पा ली थी। क्या माफी मांगने से अपराध की गंभीरता कम हो जाती है? कर्नन को जज के पद पर रहते हुए अवमानना के आरोप में सजा सुनाई गई है। सवाल है कि कर्नन द्वारा 20 जजों के खिलाफ भ्रष्टाचार[80] के आरोपों की जांच के बगैर उन्हें अवमानना का दोषी कैसे माना जा सकता है?

सुप्रीम कोर्ट द्वारा सजा के बावजूद कर्नन रिटायरमेंट के बाद भी जस्टिस कर्नन कहलाकर न्यायिक जगत में शर्मिंदगी का सबब तो बने ही रहेंगे। संविधान के अनुच्छेद 19 के अनुसार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार है। इसके अतिरिक्त दोषी व्यक्ति को भी अपना पक्ष रखने का कानूनी अधिकार है, लेकिन सुप्रीम कोर्ट द्वारा कर्नन के बयानों की मीडिया कवरेज पर प्रतिबंध लगाने का भी[80] आदेश दे दिया गया। क्या यह न्यायिक आपातकाल जैसी स्थिति नहीं? कर्नन ने सुप्रीम कोर्ट के आठ जजों को एससी-एसटी कानून के तहत पांच वर्ष सश्रम कारावास की जो सजा सुनाई थी उसे सुप्रीम कोर्ट ने रद कर दिया, लेकिन एससी-एसटी कानून, दहेज उत्पीड़न, आम्र्स एक्ट एवं दुष्कर्म के फर्जी मामलों में परेशान आम जनता को तो इतनी जल्दी राहत नहीं मिल पाती। कर्नन को नियुक्त करने वाले कोलेजियम में शामिल पूर्व जज पीके मिश्रा ने कहा है कि कर्नन[80] की नियुक्ति में गलती के लिए वह शर्मिंदा हैं। कुछ अन्य जजों का कहना है कि कर्नन की नियुक्ति आठ साल पहले हुई थी और उन्हें अब कुछ याद नहीं। यह स्वाभाविक है, लेकिन क्या इससे कोलेजियम व्यवस्था की खामी पर मुहर नहीं लगती? यह समझने की जरूरत है कि व्यवस्था के और अंगों की तरह न्यायपालिका में भी सुधार की जरूरत है। असीमित अधिकारों से लैस सुप्रीम कोर्ट को न्यायिक व्यवस्था में सुधार के लिए क्रांतिकारी कदम उठाने चाहिए।[80] यदि जजों की गलत नियुक्ति हो गई हो तो फिर नियुक्त करने वाले कोलेजियम के सदस्यों की भी जवाबदेही तय होनी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने कर्नन द्वारा पारित सभी गलत आदेशों को रद करके स्वयं को तो सुरक्षित कर लिया है, लेकिन ऐसे गलत आदेशों से अनेक लोग जिंदगी भर मुकदमेबाजी में परेशान रहते हैं।

यदि कर्नन हाई कोर्ट जज बने रहने के लायक नहीं हैं तो उनके द्वारा पिछले आठ साल में किए गए बड़े फैसलों पर पुनर्विचार करके[80] न्यायिक गरिमा को बहाल करने का प्रयास क्यों नहीं होना चाहिए? भ्रष्टाचार या अनैतिक आचरण की वजह से यदि मुकदमों में गलत फैसला होता है तो जजों को संवैधानिक संरक्षण क्यों मिलना चाहिए? अमेरिका में जजों में अनुशासन के लिए न्यायिक आयोग का प्रावधान है। सुप्रीम कोर्ट ने मई 1997 में जजों के नैतिक आचरण के लिए 16 सूत्री दिशानिर्देश पारित किए थे जिसे 1999 के चीफ जस्टिस कांफ्रेंस में स्वीकृति मिल गई। संप्रग सरकार ने न्यायिक मानक और जवाबदेही[80] विधेयक-2010 में इन दिशानिर्देशों को शामिल करके कानूनन बाध्यकारी बनाने का प्रयास किया जो पिछली लोकसभा का कार्यकाल समाप्त होने से पारित नहीं हो सका। सुप्रीम कोर्ट ने संसद द्वारा पारित जजों की नियुक्ति के कानून को 2015 में रद कर दिया और एमओपी यानी मेमोरेंडम ऑफ प्रोसिजर पर अभी तक अपनी सहमति नहीं दी है। एक तरह से दोषपूर्ण कोलेजियम व्यवस्था प्रभावी बनी हुई है। आखिर जिस व्यवस्था में विसंगति को खुद सुप्रीम कोर्ट ने स्वीकार किया था वह[80] अस्तित्व में क्यों है? सुप्रीम कोर्ट द्वारा अधीनस्थ अदालतों में जजों की नियुक्ति के लिए अखिल भारतीय परीक्षा प्रणाली पर अपनी सहमति जताना सुखद है, लेकिन जजों को परीक्षा से अधिक आत्मनिरीक्षण की ज्यादा जरूरत है।[36]